सूर्य कैसे चमकता है?

मूल लेखक : आईसक असिमोव

हिंदी अनुवाद : डा. एस. के. जैन

1 सूर्य

मानव सदैव से ही सूर्य से अवगत रहा है. और वो सूर्य के लिये कृतार्थ भी रहा है. रात्रि के अँधेरे के पश्चात्, प्रातः सूर्य केदिखने का सदैव ही स्वागत किया गया है.

दोपहर में जब भी सूर्य आकाश में नीचे की ओर रहता है, तो यह शीतकाल होता है. शीतकाल की ठन्ड एवं कोहरे में सूर्य का दोपहर के पश्चात् दिन-पर-दिन ऊपर उठना अच्छा लगता है. इसका अर्थ होता है कि बसंत आने वाला है.

इतिहास के प्रारंभ में, मानव ने समझ लिया होगा कि यदि सूर्य नहीं चमका, तब प्रत्येक वस्तु काली एवं ठंडी रहेगी. कुछ भी पैदा नहीं होगा तथा जीवन का अंत हो जायेगा. कभी-कभी सूर्य निकलता तो था पर दिन के समय भी काला अँधेरा हो जाता था, क्योंकि चंद्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ सूर्य के सामने आ जाता था. प्राचीन काल में लोगों ने सोचा कि सूर्य लुप्त हो गया और वो घबराजाते थे. चैन तब मिलता जब चन्द्रमा सूर्य के सामने से हट जाता तथा सूर्य पुनः चमकने लगता था.

पूर्ण सूर्य ग्रहण कभी-कभार ही होता है, तथा जब ऐसा होता है तो अत्यंत अल्प समय के लिये होता है. इसके अतिरिक्त, सूर्य प्रत्येक दिन प्रकाशमान होता है तथा संसार को प्रकाश एवं गर्मी देता है. कुछ समय के लिये बादल सूर्य को छिपा देते हैं, बाकी समय इसका प्रकाश एवं गर्मी संसार तक पहुँचते रहते हैं. बादलों वाले दिन में कभी भी इतनी ठंडा नहीं होती जितनी ठंडरात में होती है.

सूर्य हमारे लिये इतना महत्वपूर्ण है, कि इतिहास के प्रारंभ में इसको ईश्वर का रूप माना जाता था. 1370 ई० पूर्व इखानाहतुन नाम के मिस्त्र के राजा ने घोषणा करी कि केवल सूर्य ही ईश्वर है, तथा अपने राज्य में प्रत्येक को सूर्य की उपासना के लिये प्रेरित किया.

जीवन को नष्ट करने के लिये सूर्य को पूर्णतः लुप्त होना आवश्यक नहीं है. यदि सूर्य थोड़ा हल्का सा प्रकाशमान (रोशन) होता है, तो भी पृथ्वी पर निरंतर शीतकाल रहेगा, तथा इसके फलस्वरूप सभी जीवन नष्ट जाएगा. यदि सूर्य कुछ अधिक चमकता है, तो पृथ्वी अत्यधिक गर्म हो जायेगी, तथा इसके कारण भी सभी जीवन नष्ट हो जाएगा. यदि सूर्य कुछ समय हल्का (धुंधला) हो जाता है, तथा अन्य समय अधिक तेज (तीव्र) होता है, तब भी मौसम में ऐसा परिवर्तन जीवन को नष्ट कर देगा.

परन्तु भाग्यवश इनमे से कोई भी स्थिति नहीं आती. दिन-प्रतिदिन, साल-दर-साल, शताब्दी-दर-शताब्दी, जब से मानव अस्तित्व में है, सूर्य निरंतर प्रकाशमान(रोशन) होता रहा है.

इतिहास के प्रारंभ से अंत तक, सर्वाधिक लोगों ने मान लिया है कि सूर्य आकाश में था तथा प्रकाशमान हुआ. वो उगता था तथा छिप जाता था, तथा आकाश में ऊपर-नीचे गतिमान होता था, जिसके कारण दिन व रात एवं सर्दी-गर्मी के मौसम होते थे. इसकी यही दिनचर्या थी.

सर्वाधिक लोगों ने माना था कि किसी ईश्वर ने सूर्य को उत्पन्न किया था, ताकि लोगों को गर्मी एवं प्रकाश प्राप्त हो सके. ईश्वर ने अपनी उत्कृष्ट बुद्धिमानी से रात व दिन तथा सर्दी एवं गर्मी बनायें. ईश्वर के लिये प्रश्न का कोई औचित्य (अर्थ) नहीं है.

फिर भी कुछ लोगों ने प्रश्न करना उचित समझा. उन्हें आश्चर्य हुआ - सूर्य किस तरह तथा किन पदार्थों से बना था?

सूर्य प्रकाश की एक सामान्य गेंद प्रतीत होता है. तुम रबर अथवा पत्थर अथवा लोहे की गेंद की कल्पना कर सकते हो. यह उस पदार्थ से बनी है जिसे तुम छू सकते हो तथा अनुभव कर सकते हो. प्रकाश की गेंद भिन्न होती है. प्रकाश पदार्थ-रहित है. यह पदार्थ नहीं है. यह ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसे तुम छू सको तथा अनुभव कर सको. यदि सूर्य आकाश में प्रकाश की एक गेंद है जो किसी भी वस्तु पर पड़ने पर चमकती है तथा प्रत्येक स्थान पर प्रकाश देती है, तो यह कुछ अदभुत है.

संभवतः कुछ अर्थों में इसमें कुछ अदभुत नहीं भी हो सकता है. आखिकार मानव स्वयं भी प्रकाश की लघु गेंदे बना सकता है. जब भी तुम अग्नि उत्पन्न करते हो अथवा अग्नि की लपटें उत्पन्न करते हो, ये लपटें उसी प्रकार प्रकाश एवं गर्मी देती हैं जिस प्रकार सूर्य करता है. रात्रि में तुम संभवतः आग जलाते हो, ताकि सूर्य की अनुपस्थति में प्रकाश व गर्मी प्राप्त हो सके. शीतकाल में तुम पूरे दिन आग जला सकते हो ताकि गर्माहट प्राप्त हो सके.

अन्यथा, तुम मोमबत्ती अथवा तैल का छोटा दिया जला सकते हो, यह छोटी ज्योति देता है, पर ठण्ड में गर्माहट देने के लिये पर्याप्त नहीं है. परन्तु यह अँधेरे में वस्तुओं को प्रकाशित करने के लिये पर्याप्त है.

फिर भी, आकाश के सूर्य में, तथा मानव निर्मित अग्नि में अनेक अंतर हैं.एक बात तो यह है कि सूर्य गोल गेंद है, जो परिवर्तित नहीं होती, जबकि पृथ्वी पर निर्मित (उत्पन्न) अग्नि का कोई निश्चित आकर (आकृति) नहीं होता. पृथ्वी की अग्नि में ज्योति का झिमिलाना, छोटा-बड़ा होना ऐसे परिवर्तन होते रहते हैं.

और अधिक महत्वपूर्ण अंतर यह भी है कि पृथ्वी पर अग्नि अस्थायी है, जो काठ (लकड़ी), मोम, तैल जैसे ईंधन को जलाने से प्राप्त होती है. एक बार ईंधन पूरी तरह जल गया तो अग्नि समाप्त हो जाती है. यदि तुम्हे अग्नि को निरंतर जलाये रखना है, तो और अधिक ईंधन की आपूर्ति करनी होगी, अतः और लकड़ी/कोयला आग में डालना होगा.

सूर्य इस प्रकार बिलकुल भी नहीं है. यह निरंतर सदैव प्रकाशित/रोशन रहता है, तथा कभी भी रुकता नहीं है. परन्तु, चिरकालिक ग्रीक वैज्ञानिक, अरिस्तोतल (Aristotle, 384-322 BC) ने विचार किया कि शायद पृथ्वी पर नियम आकाश से भिन्न हैं. उसने अनुभव किया कि पृथ्वी ऐसे पदार्थों से निर्मित है, जो निरंतर परिवर्तित होते हैं, तथा क्षय (नाश) हो जाते हैं. इस कारण, यदि प्रकाश पृथ्वी पर उत्पन्न होता है, तो वो अधिक समय तक नहीं रहता. अग्नि की लपटें छोटी-बड़ी होती हैं तथा परिवर्तित होती हैं - ईंधन उपयोग होता है एवं प्रकाश समाप्त होता है.

अरिस्तोतल ने निर्णय किया कि आकाश में वस्तुएं निर्दोष एवं अपरिवर्तनशील पदार्थों से बनी हैं, जो पृथ्वी के पदार्थों के समान नहीं हैं. उसने आकाश के पदार्थों को आकाश/वायु/ईथर (ether) कहा. ग्रीक शब्द में इसका अर्थ टिमटिमाना होता है, क्योंकि उसने अनुभव किया कि आकाश/वायु चमकने के लिये बना है जो सदैव बना रहा.

अरिस्तोतल को सूर्य, वायु/आकाश की एक गेंद लगती थी, तथा इसे सदैव प्रकाशित होने के लिये किसी ईंधन की आवश्यकता नहीं होती थी.

परन्तु, क्या अरिस्तोतल का धारणा/कल्पना सही थी? क्या आकाश में वस्तुएं पूर्णतः पृथ्वी की वस्तुओं से भिन्न थीं? आकाश में भी कुछ वस्तुएं ऐसी भी हैं जो चमकीली हैं फिर भीसदैव नहीं चमकती. उनका प्रकाश चमकता है तथा समाप्त हो जाता है.

उल्का (meteors) अथवा गिरते हुए तारे (shooting-stars) आकाश से गिरते हैं तथा लुप्त हो जाते हैं. धूमकेतु (comets) भी आते तथा चले जाते. अरिस्तोतल ने इन सबको वायु का ही भाग माना, न कि आकाश का.

परन्तु, चंद्रमा के विषय में क्या? वो सदैव अपना आकर (आकृति) परिवर्तित करता रहता है. कभी यह प्रकाश के वृत की तरह गोल था, परन्तु अन्य समय पर यह एक ओर को दबा हुआ (squashed) था. यह प्रकाश का अर्ध-वृत अथवा पतला सा नवचन्द्र हो सकता है.
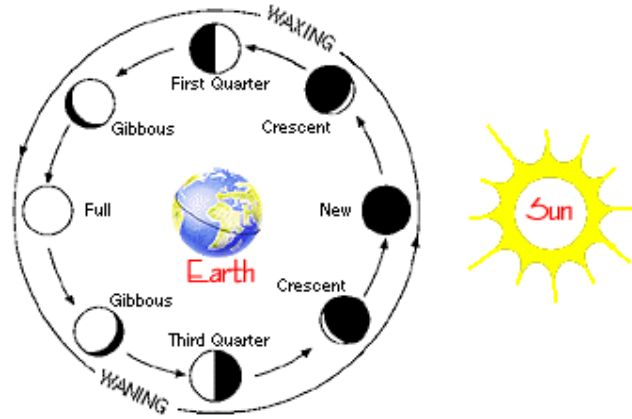
लोगों को यह समझने में देर नहीं लगी कि आकृति में यह परिवर्तन अथवा चरण (phases) इसलिए होते हैं, क्योंकि आधा चंद्रमा सूर्य द्वारा प्रकाशमान था तथा दूसरा आधा भाग नहीं था. पृथ्वी की तरह चंद्रमा में भी दिन व रात के भाग (sides) होते हैं. चंद्रमा की आकृति इस पर निर्भर करती है कि हमारी ओर चंद्रमा के भाग का कितना अंश सूर्य के प्रकाश में था. अन्य शब्दों में, चंद्रमा अँधेरी दुनिया में था तथा और अधिक प्रकाशमान नहीं हुआ. चंद्रमा अरिस्तोतल के आकाश/वायु से नहीं बना था.

1609 ई०में गैलिलियो (Galileo) नाम के वैज्ञानिक (1564-1642) ने एक लघु दूरबीन (telescope) बनायी. दूरबीन से छोटी वस्तुएं बड़ी दिखती हैं तथा धुंधली (dim) वस्तुएं चमकती हुई (bright) दिखती हैं. गैलिलियो ने दूरबीन को आकाश की ओर इंगित किया तथा चंद्रमा को अपेक्षाकृत (आँखों से दिखने वाले से) बड़ा तथा साफ़ देखा. दूरबीन द्वारा देखने पर चंद्रमा में पहाड़ियां एवं समतल क्षेत्र दृष्टिगत हुए. यह भी पृथ्वी की तरह एक दुनिया थी.

तत्पश्चात, दूरबीन से जब उसने शुक्र गृह (Venus Planet) को देखा, तो उसने इसमें भी पाया कि चंद्रमा की भांति इसमें भी विभिन्न भाग थे. यह एक अन्य काला पिंड (Black Body) था, जो सूर्य के प्रकाश को परावर्तित करने से प्रकाशमान हुआ. सभी गृह काले पिंड थे, जो अरिस्तोतल के आकाश/वायु से नहीं बने थे.

फिर भी सूर्य स्वयं से प्रकाशित हुआ. क्या आकाश/वायु हो सकता था?
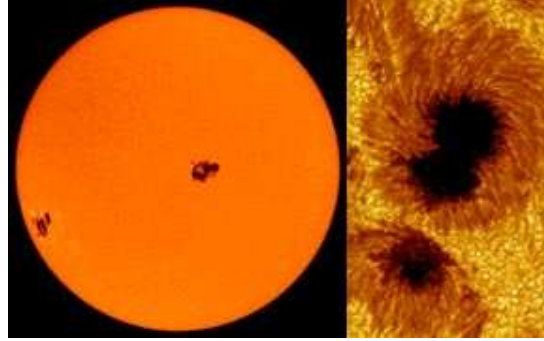
यदि ऐसा है, तो इसे पूर्णतः साफ तथा धब्बे/निशान/चिन्ह रहित होना चाहिए. परन्तु, गैलिलियो ने देखा कि ऐसा नहीं था. अपनी दूरबीन से उसने सूर्य पर काले धब्बे देखे. इनको देखते हुए वह देख सका कि सूर्य अपनी धुरी/अक्ष पर घूमता है, तथा 26-दिन में एक चक्कर पूर्ण लगता है.
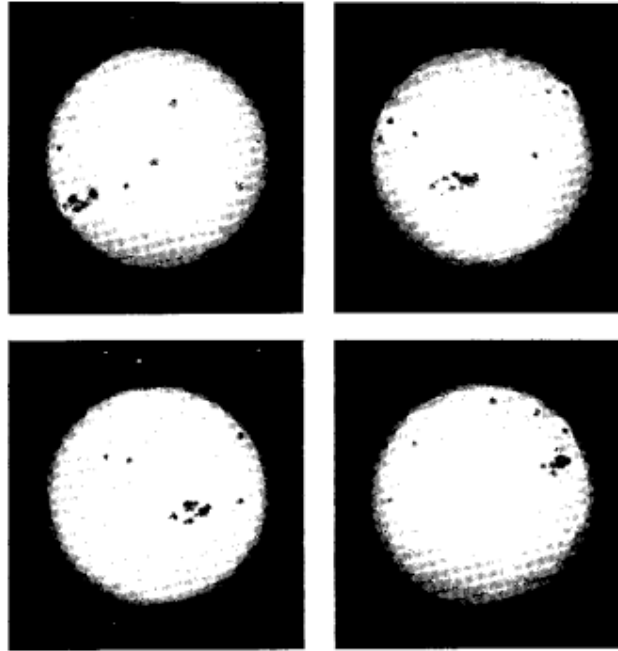
Sunspots show rotation of Sun in seven days

तो क्या हो सकता है कि सूर्य किसी पदार्थ से बना है, न कि पदार्थ रहित प्रकाश से? गैलिलियो के समय से ही लोग संदेह करने लगे थे कि ऐसा भी हो सकता है.

आदि काल में, लोगों ने सोचा कि सूर्य पृथ्वी के चारों ओर घूमता है, क्योंकि देखने में ऐसा ही प्रतीत होता है. 1543ई० में पॉलिश खगोल वैज्ञानिक निकॉलौस कॉपरनिकस (1473-1543) ने एक पुस्तक प्रकाशित की, जिसमे पृथ्वी के सूर्य के चारो ओर घूमने का कारण दिया है.

गैलिलियो के समय से, अधिकांश खगोल वैज्ञानिक इस मत/विचार को मानते थे, तथा इसने सूर्य को और अधिक महत्वपूर्ण बना दिया. इस तथ्य से खगोल वैज्ञानिकों को सूर्य और अधिक महत्वपूर्ण/रुचिकर प्रतीत होने लगा.

उदाहरण के तौर पर, सूर्य पृथ्वी से कितनी दूरी पर है? पुराने ज़माने में ग्रीकवासी भी इस विषय पर आश्चर्य चकित थे, परन्तु उनके पास नापने/मापने के लिये अच्छे एवं योग्य उपकरण नहीं थे. दूरबीन के साथ यह काम सरल हो गया.

1672 ई० में गिओवन्नि कैसिनी (Giovanni Casini 1625-1712) नाम के एक इताल्वी-फ्रेंच खगोल वैज्ञानिक ने सर्वप्रथम सूर्य से पृथ्वी की दूरी को पर्याप्त रूप से ठीक नापा. इससे प्राप्त सूर्य की दूरी किसी के भी द्वारा नापी/मापी गयी दूरी से अपेक्षाकृत अत्यंत अधिक थी.

अब हमे ज्ञात है कि सूर्य प्रथ्वी से 92,900,000-मील (लगभग 148,000,000-कि० मी०) दूरी पर है. पृथ्वी पर दृष्टिगत होने वाले सूर्य की आकृति और आकार इतना अधिक है. अतः, इसका आकार वास्तव में अत्यधिक बड़ा/विशाल होगा.

पृथ्वी स्वयं ही पदार्थों की एक विशाल गेंद है, जो 7900-मील (लगभग 12700-कि० मी०) चौड़ी गेंद है. अतः, पृथ्वी की अपेक्षाकृत सूर्य 109-गुणा चौड़ा है.

तत्पश्चात, 1687 ई० में इसाक न्यूटन (Isaac Newton 1642-1727) नाम के एक अंग्रेज वैज्ञानिक ने गुरुत्वाकर्षण (gravitational force) के नियम की गणित को खोज निकला. इसका प्रयोग करके, महत्वपूर्ण गणना संभव हो सकी. यदि पृथ्वी सूर्य से 92,900,000 –मील (148,000,000-कि० मी०) दूर है तथा सूर्य के चारों ओर घूमने में पृथ्वी को 1-वर्ष का समय लगता है, तब सूर्य में पदार्थ की मात्रा (mass), पृथ्वी में विद्यमान पदार्थ की मात्रा की अपेक्षा 332,900-गुणा होगी.

सूर्य को एक चमकते हुए अपदार्थी प्रकाश की गेंद के रूप में मानना संभव नहीं रहा. सूर्य पदार्थ अथवा पदार्थों से बना था. और अधिक क्या, यह बिलकुल साफ़ था कि गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी तथा आकाश दोनों पर ही न्यूटन के गणित के अनुसार कार्य करता है. इस बिंदु से, वैज्ञानिक पूर्णतः संतुष्ट थे, कि आकाश एवं पृथ्वी पर प्रकृति के नियम भिन्न होने के अरिस्तोतल के विचार इस विषय में गल्त थे. वैज्ञानिकों ने निर्णय लिया कि प्रकृति के नियम ब्रह्माण्ड (universe) में प्रत्येक स्थान पर एक समान हैं.

इस स्थिति में, वैज्ञानिकों को एक महत्वपूर्ण समस्या का सामना करना पड़ा.पृथ्वी पर स्वयं कुछ भी नहीं चमकता था, और न ही पृथ्वी सदैव दैदीप्यमान रहती थी. इस स्थिति में सूर्य किस प्रकार दैदीप्यमान रहता है,

क्योंकि सूर्य भी उसी नियम से संचालित होता है,जिससे कि पृथ्वी? अतः, दैदीप्यमान होने के लिये सूर्य किस प्रकार प्रबंध/संचालन करता है, तथा आदिकाल से कैसे दैदीप्यमान रहा है?

क्यों नहीं, कोई ऐसा तर्क दे सकता है कि यद्यपि सूर्य पदार्थ से बना है, इसका पदार्थ पूर्णतः पृथ्वी के पदार्थ से भिन्न हो सकता है. संभवतः, सूर्य के पदार्थ की प्रकृति दैदीप्यमान होने एवं निरंतर दैदीप्यमान होने की थी. संभवतः, ऐसा ही पदार्थ यदि पृथ्वी पर हो, तो वह भी दैदीप्यमान होगा.

फिर भी, यह निराशाजनक प्रतीत हुआ कि सूर्य का कोई टुकड़ा प्राप्त हो सके, जिसका अध्ययन किया जा सके. इस कारण से न्यूटन के समय में लोग यह ज्ञात नहीं कर सके कि किस कारण से सूर्य रोशन/प्रकाशमान है.

2. ऊर्जा

वैज्ञानिक केवल सूर्य में ही नहीं रूचि रखते थे, अपितु, उनकी रूचि पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाली सामान्य अग्नि में भी थी. यदि कोई ईंधन को जलाता है, तो जलने से उत्पन्न ऊष्मा जल को उबाल देती है, तथा उसे वाष्प में परिवर्तित कर देती है. वाष्प फैलती है, तथा इसका उपयोग छड़ों को धक्का देने तथा पहियों को घुमाने में किया जा सकता है. इस प्रकारअग्नि, मशीन का कार्य कर सकती है.
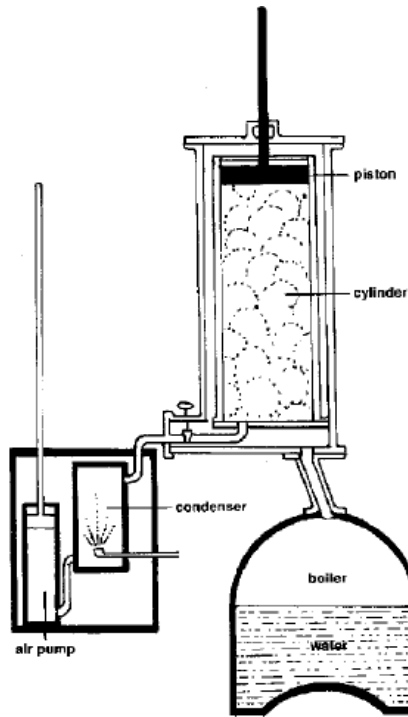
Watt's steam engine

यह ऊर्जा है, जो वास्तव में चीजों/वस्तुओं को कार्य करने के लिये अग्रसर करती है. एनर्जी शब्द ग्रीक भाषा से आया है, और उसका अर्थ होता है, अन्तः (अंदर) में कार्य करना.

1764 ई० में, जेम्स वाट (James Watt 1736-1819) नाम के एक स्कॉटिश अभियंता ने वास्तविक कार्य करने वाला प्रथम वाष्प इंजन बनाया. इसमें ईंधन को जलाने से मशीन ने कार्य किया. मशीन ने मानव की मासपेशियो का स्थान लेना प्रारंभ कर दिया, तथा इससे आधुनिक संसार/दुनिया में भरी परिवर्तन आया.

स्वाभाविक रूप से, इसने वैज्ञानिकों को ऊर्जा को एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थान्तरण के लिये विशेष रूप से रुचिकर बनाया. वे जानना चाहते थे कि ईंधन से कितनी ऊर्जा प्राप्त हो सकती है. इसे करने के लिये, उन्होंने सीखा/जाना कि ऊर्जा की मात्रा को अधिक से अधिक यथार्थता के साथ कैसे मापा जाये.

1840 ई० में, जेम्स प्रेसकोट जूल (James Presscott Joule 1818-1889) नाम के अंग्रेज वैज्ञानिक ने इस प्रकार के अनेक मापन किये, जैसे कि प्रकाश, ध्वनि, गति, ऊष्मा, विद्युत्, चुम्बकत्व, इत्यादि के साथ प्रयोग किये.

वह ऊर्जा के एक रूप को दूसरे रूप में परिवर्तित एवं एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थान्तरित कर सका.परन्तु उसे ऐसा प्रतीत हुआ, कि इन सभी परिवर्तन तथा स्थानान्तरण में सम्पूर्ण ऊर्जा कभी भी परिवर्तित नहीं हुई.

उसी समय, अन्य वैज्ञानिक इसी निष्कर्ष पर बिना सावधानी के मापन से पहुँच गए. उदारणतः 1842 ई० में, जूलियस रोबर्ट मायेर (1814-1878) नाम के एक जर्मन चिकित्सक ने ऐसा किया.

क्योंकि जूल एवं मायेर सर्वविदित वैज्ञानिक नहीं थे, किसी ने भी उनके प्रति ध्यान नहीं दिया. परन्तु, 1847 ई० में, एक अधिक महत्वपूर्ण जर्मनी वैज्ञानिक, हेर्मन्न वोन हेल्म्होलत्ज़ (Hermann von Helmholtz 1821-1894) इसी निष्कर्ष पर पहुंचे और इस समय उनको सबने सुना.

अतः, माना जाता है, कि हेल्म्होलत्ज़ ने ही ऊर्जा के अविनाशिता के नियम को प्रतिपादित/लागू किया. इसके अनुसार, ऊर्जा स्थान्तरित एवं परिवर्तित की जा सकती है, परन्तु न ही उत्पन्न की जा सकती है, तथा न ही नाश की जा सकती है. अतः ब्रह्माण्ड की कुल ऊर्जा समान रहती है.

जूल एवं मायेर को भी इसका श्रेय जाता है. परन्तु, संभवतः हेल्म्होलत्ज़ को अधिकतम श्रेय जाता है. और इसके लिये, उसके पास एक महत्वपूर्ण प्रश्न था. यदि अविनाशिता का नियम सत्य है, तब जब भी कार्य किया जाता है, तब प्रश्न उठता है कि ऊर्जा कहाँ से आती है. चलने वाली मशीन में ऊर्जा अग्नि से आती है. अग्नि में ऊर्जा ईंधन से आती है.

परन्तु, इस स्थिति में ईंधन में ऊर्जा कहाँ से आती है?

यदि ईंधन, काठ/लकड़ी है, तब यह पेड़ो से बनता है, जो सूर्य के प्रकाश से ऊर्जा को अवशोषित करते हैं, तथा काठ/लकड़ी का निर्माण करते हैं.

यदि ऊर्जा कोयला है, तब यह काठ/लकड़ी का अवशेष है, जो करोडों वर्ष पुराने हैं. तथा यह लकड़ी/काठ सूर्य के प्रकाश की ऊर्जा से निर्मित हुई.

यदि ईंधन तेल है, तब यह सूक्ष्म जीवों/जंतुओं के अवशेष है, जिनका भोजन सूक्ष्म वनस्पति/पेड़ थे. पेड़ों को ऊर्जा, सूर्य के प्रकाश से प्राप्त होती थी.

कभी-कभी, जहाँ पर ईंधन नहीं जलाया गया, वहां भी ऊर्जा प्रगट होती है. विद्युत्-प्रकाश, ऊष्मा एवं प्रकाश दोनों ही देती है, जबकि हम कोई ईंधन जलता हुआ नहीं देखते. इससे भी अधिक यह है कि, यह ऊष्मा एवं प्रकाश देती ही रहती है, जब तक इसको प्लग से लगाये रखते हैं, तथा स्विच-आन रहता है. ऊर्जा कहाँ से आती है?

यदि हम इसका स्रोत पता करें, तो हमे ज्ञात होगा कि ऊर्जा विद्युत जनित्र/जेनेरेटर से आती है, जो विद्युत् उत्पन्न करता है. पर इसकी ऊर्जा कहाँ से आती है?

इसका अर्थ है, कि जनित्र/जेनेरेटर में ऊर्जा सामान्यतः ईंधन को जलने से आती है. यदि ईंधन उपयोग में आ चुका है तो और विद्युत् उत्पन्न नहीं होगी, तथा विद्युत् प्रकाश नहीं रहेगा. अन्य सभी विद्युत् उपकरण भी काम/कार्य करना बंद कर देंगे. और निश्चित रूप से, ईंधन की ऊर्जा सूर्य के प्रकाश से आती है.

कुछ विद्युत् जनित/जेनेरेटर बिलकुल भी ईंधन का उपयोग नहीं करते हैं. ये झरनेसे पानी गिरने की ऊर्जा से विद्युत् उत्पन्न करते हैं. ये जल प्रपात/झरने अथवा तेजी से बहने वाली नदियों से मिलते हैं. परन्तु, यह ऊर्जा कहाँ से आती है.

यदि, वर्षा जल का अधिक योगदान नहीं करेगी, तो जल प्रपात/झरने एवं नदियाँ बहना बंद कर देंगे. अतः, ऊर्जा झरने/गिरने वाली वर्षा से आती है. वर्षा की ऊर्जा सूर्य के प्रकाश से आती है, जो समुद्र के जल को गर्म करता है, तथा उसे वाष्प में परिवर्तित करता है. ये वाष्प वायु में ऊपर उठकर बादल बनाती हैं, और फिर वर्षा के रूप में गिरती हैं.

अतः अंत में हम किसी भी प्रकार की ऊर्जा को सूर्य के प्रकाश से प्राप्त होने का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं. सूर्य का प्रकाश, लगभग सभी ऊर्जाओं का स्रोत है.

हेल्म्होलत्ज़, ऊर्जा की अविनाशिता के नियम को समझ गया, उसने सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि तुम केवल सूर्य पर ही रूक नहीं सकते. सूर्य अपनी ऊर्जा कहाँ से प्राप्त करता है? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न था, जो हेल्म्होलत्ज़ ने किया. सूर्य को कौन प्रकाशमान/दैदीप्यमान करता है?

इसको प्रारंभ करने के लिये, लोग आश्चर्य कर सकते हैं, कि सूर्य किस प्रकार के ईंधन से बना है, तथा कुछ ऐसा रखता है जिसमे ईंधन को जलाया जा सके. पृथ्वी पर ईंधन जैसे कि कोयला ऑक्सीजन के साथ जुड़ता है होता है, जो वायु की एक गैस है. यह क्रिया कोयले को जलाती है, तथा प्रकाश एवं ऊष्मा उत्पन्न करती है.

यदि सूर्य पूर्णतः कोयले तथा ऑक्सीजन से बना होता, तब क्या होता? कल्पना करो कि कोयले का एक ढेर जिसकी मात्रा पृथ्वी की मात्रा से 332,900-गुणा हो. यदि यह कोयला तथा ऑक्सीजन जलना प्रारंभ करें, तो क्या यह बहुत लम्बे समय तक जलता रहेगा.

यह जलता रहेगा, परन्तु कब तक? मानो कि, यह शीघ्रता से जलता होता है, तथा सूर्य के समान विशाल मात्रा में ऊर्जा देता है, जो सूर्य के समान ऊष्मा एवं प्रकाश देता है. उस स्थिति में ऐसा प्रतीत होगा कि उस कोयले के ढेर एवं ऑक्सीजन के योग से सम्पूर्ण कोयला 1500-वर्ष में जल जायेगा.

यह सत्य नहीं हो सकता. लगभग 1500-वर्ष पूर्व, रोमन राज्य का अंत हो गया था, और हम यह जानते हैं कि सूर्य उससे पूर्व भी प्रकाशमान था.

यदि सूर्य ऐसे रसायनों से बना होता, जो ऊर्जा देने लिये परस्पर इस प्रकार योग करते, जैसे कि वे पृथ्वी पर करते हैं, तब कोई भी संभव क्रिया इतने लम्बे समय तक प्रकाश नहीं दे सकता, जो सूर्य के प्रकाश के सामान, सभ्यता से भी पूर्व से प्रकाशमान/दैदीप्यमान हो.

लगभग 1750 ई० तक, प्रत्येक के विचार थे, कि सूर्य एवं पृथ्वी लगभग सभ्यता के प्रारंभ पर ही अस्तित्व में आये. उन्होंने विचार किया कि सूर्य एवं पृथ्वी एक साथ लगभग 6000-वर्ष से अस्तित्व में हैं. परन्तु, वैज्ञानिकों ने साक्ष्य ढूंढने प्रारंभ किये कि सूर्य तथा पृथ्वी उससे भी अति प्राचीन समय से हैं.

हेल्म्होलत्ज़ के समय तक, वैज्ञानिक पूर्णतः संतुष्ट थे, कि पृथ्वी करोडों वर्ष पुरानी है, और पूरे समय से सूर्य आकाश में विद्यमान रहा, तथा सूर्य वैसा ही प्रकाशमान रहा जैसा कि आज है. हेल्म्होलत्ज़ को ऊर्जा का ऐसा स्रोत ढूंढना पड़ा जो केवल कुछ हज़ार वर्ष ही नहीं, अपितु अनेक करोडों वर्ष तक मिलता रहे.

ऊर्जा का एक स्रोत जो ऐसा कर सकता है, वह गति की ऊर्जा हो सकती है.

सूर्य तथा पृथ्वी के चारों ओर हर ओर पदार्थों के अनन्य कण होते हैं, जो सूर्य के चक्कर लगाते हुए अनेक मील (कि० मी०) की गति से गतिशील रहते हैं. इन कणों का अधिकांश भाग धूल के कणों के सामान है. कुछ बजरी एवं चट्टानों के सामान बड़े हैं, तथा कुछ तो पहाड़ों के सामान विशाल हैं. किसी भी गतिशील वस्तु में ऊर्जा होती है. यदि कोई गतिशील कण किसी वस्तु/पिंड से टकराता है, तो इसकी गति की ऊर्जा या तो वस्तु/पिंड में स्थान्तरित हो जाती है, अथवा किसी अन्य रूप की ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है.

पदार्थ के ये गतिशील कण आकाश से पृथ्वी पर निरंतर प्रहार करते रहते हैं. सूक्ष्मतम कण वायु द्वारा लगभग तुरंत ही रोक दिए जाते हैं. ये वहां हानि रहित होकर तैरते रहते हैं, और अत्यंत धीमे से पृथ्वी में मिल जाते हैं.

पदार्थ के बड़े कण जैसे ही वायु के माध्यम से प्रवेश करते हुए जाते हैं, गर्म हो जाते हैं तथा उल्काओं की तरह चिंगारियां उत्पन्न करते हैं.

सामान्यतः ये कण ऊपर वायु में रहते हुए वाष्प में परिवर्तित हो जाते हैं, परन्तु पदार्थ के कुछ कण इतने बड़े होते हैं कि उनको वाष्प में परिवर्तित होने के लिये पर्याप्य समय नहीं मिलता. ये पृथ्वी पर पहुँचते हैं, तथा आकाश से ऐसे गिरने वाले पिंडो को उल्का कहते हैं.

प्रत्येक गतिशील वस्तु जो पृथ्वी पर टकराती है, पृथ्वी को ऊर्जा स्थान्तरित कर देती हैं. परन्तु कुल ऊर्जा भी कुछ अंतर के लिये पर्याप्त नहीं होती.

यद्यपि, सूर्य, पृथ्वी की अपेक्षा बहुत विशाल है, इस कारण से यह (सूर्य) टकराने के लिये बड़ा (विशाल) लक्ष्य है. पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य में गुरुत्वाकर्षण अत्यंत अधिक शक्तिशाली है.
इन दोनों कारणों से, अनेक अन्य गतिशील वस्तुएं, पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य से टकरा सकती हैं.

हेल्म्होलत्ज़ ने गणना की कि यदि लगभग 100,000,000,000,000 (100-टन) पदार्थ सूर्य को प्रत्येक घंटे गर्म करता है, और यदि उनकी गति की ऊर्जा, ऊष्मा में परिवर्तित होती है, यह सूर्य को उसी प्रकार प्रकाशमान रख सकती है जैसे कि होता है. परन्तु समस्या यह है कि वहां आकाश में पर्याप्त गतिशील पदार्थ नहीं हैं, जो सूर्य को करोडों-अरबो टन पदार्थ की आपूर्ति अरबो वर्ष तक कर सके.

इसके अतिरिक्त, मान भी लो कि ऐसा है. इसका अर्थ होगा कि सूर्य की मात्रा में 100,000,000,000,000 (100-टन) की प्रति घंटे वृद्धि होती रहेगी. सूर्य की कुल मात्रा की अपेक्षा में यह कुछ अधिक नहीं है, परन्तु यह प्रति घंटे बढती जायेगी. यह सूर्य के गुरुत्वाकर्षण को अधिक, और अधिक शक्तिशाली कर देगी. इस कारण से, पृथ्वी सूर्य के चारों ओर अधिक पर अधिक गति/वेग से गतिशील/गतिमान होगी. यथार्थ/सत्यता में, इसका अर्थ होगा कि पृथ्वी पर प्रत्येक वर्ष पिछले वर्ष से 2-सेकंड छोटा होता जायेगा.
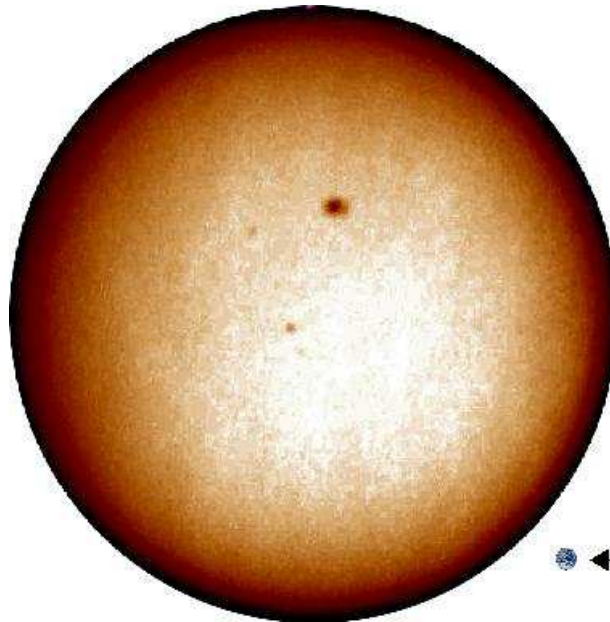
2-सेकंड का अंतर कुछ अधिक नहीं होता, परन्तु हेल्म्होलत्ज़ के समय में भी वैज्ञानिक समय को इतनी शुद्धता से माप सके कि यह सिद्ध हो गया कि वर्ष छोटा नहीं हो रहा है. अतः केवल यह धारणा कि सूर्य की ऊर्जा टकराने से उत्पन्न होती है, कार्यरत/कारगर नहीं हुई.

परन्तु, हेल्म्होलत्ज़ को एक अन्य विचार आया. मानो कि सूर्य स्वयं के गुरुत्वाकर्षण के कारण सिकुड़ता है, तथा छोटा होता है, तब इसके पदार्थ का प्रत्येक कण केंद्र की ओर गिरेगा.

सूर्य के गुरुत्वाकर्षण के कारण, गिरते हुआ कण की गति/वेग की ऊर्जा में वृद्धि होती रहेगी. इस ऊर्जा को ऊष्मा एवं सूर्य का प्रकाश कह सकते हैं. इस प्रकार सूर्य की ऊर्जा का स्रोत इसका अपना गुरुत्वाकर्षण होगा.

स्वभाविक है, जैसे ही सूर्य का अधिकतम संभव पदार्थ अंदर की ओर गिर जायेगा, ऊर्जा का यह स्रोत समाप्त हो जायेगा. परन्तु इसमें कितना समय लगेगा?

हेल्म्होलत्ज़ गणना कर सका कि यदि सूर्य प्रति 3-घंटे, 1-इंच (2.54-से० मी०) सिकुड़ता है, इसको इतनी ऊर्जा प्राप्त होती रहेगी जितनी कि इसके प्रकाश एवं ऊष्मा को बनाये रखने में आवश्यक है. और यदि, यह केवल 3-घंटे, में 1-इंच (2.54 से० मी०) सिकुड़ता है, तो यह और सिकुड़न के संभव न होने तक करोडों वर्ष तक सिकुड़ता रहेगा.

यदि सूर्य सम्पूर्ण ऐतिहासिक समय तक इसी प्रकार सिकुड़ता रहा, तो भूतकाल में इसे और अधिक विशाल होना चाहिये था. उस मूल आकार (आकृति) से विद्यमान छोटे आकार तक सिकुड़ने में यह पूर्व के करोडों वर्षों तक जलता रहा होगा.

और अधिक क्या, सिकुड़न सूर्य की कुल मात्रा में कोई योगदान नहीं करेगी तथा उसके गुरुत्वाकर्षण को प्रभावित नहीं करेगी. इसका अर्थ है, कि हमारे वर्ष में कोई अंतर नहीं आयेगा.

इस प्रकार, यह एक विलक्षण बुद्धिमता पूर्ण विचार था,तथा लगभग 50-वर्षों तक, खगोल वैज्ञानिक हेल्म्होलत्ज़ के सुझाव से संतुष्ट थे. इसके अतिरिक्त कोई और व्याख्या/स्पष्टीकरण नहीं सूझ रहा था.

3. आयु एवं पदार्थ

हेल्म्होलत्ज़ की इस धारणा ने प्रत्येक को संतुष्ट/प्रसन्न नहीं किया. कुछ लोगों को पृथ्वी का अत्यंत पुराना होना प्रतीत नहीं हुआ.

हेल्म्होलत्ज़ के समय में, यह विचार किया गया कि सूर्य धूल एवं गैस के एक विशाल बादल/मेघ से प्रारंभ हुआ, जो धीरे-धीरे अपने ही गुरुत्वाकर्षण के कारण सिकुड़ता चला गया. जैसे जैसे बादल सिकुड़ रहा था, वह घूम रहा था, तथा जैसे जैसे वह छोटा होता गया, वह तीव्र और तीव्र घूमने लगा. प्रत्येक बार, कुछ समय पश्चात् घूमने की गति में वृद्धि होने से पदार्थ किनारों से बाहर फैंका जाता था. इस पदार्थ ने गृह का रूप लिया.

इस मत के अनुसार, पृथ्वी तब बनी होगी, जब सूर्य 186,000,000-मील (300,000,000-कि मी) की चौड़ाई तक सिकुड़ गया होगा. यह वह दूरी है, जो उस वृत के विकर्ण को प्रदर्शित करती है, जो पृथ्वी के सूर्य के चारों ओर घूमने से बनता है. यदि सूर्य इससे बड़ा होता, तब पृथ्वी सूर्य के अंदर बनती, और यह संभव नहीं है.

जब पृथ्वी बनी, यदि सूर्य लगभग 186,000,000-मील (300,000,000-कि मी) का होता, तो इसे वर्तमान के 865,000-मील (लगभग 1400,000-कि मी) की आकृति/आकार में सिकुड़ने में कितना समय लगता? यदि यह इतने प्रकाश एवं ऊर्जा देने के लिये सिकुड़ता, तो ऐसा करने में इसे लगभग 100,000,000-वर्ष लगते.

तब भी, कुछ लोगों के लिये 100,000,000 वर्ष का समय पर्याप्त नहीं था.

भू-विज्ञानी पृथ्वी की चट्टानों का अध्ययन विस्तार में प्रारंभ कर रहे थे. वे अध्ययन कर रहे थे कि किस प्रकार चट्टानें परिवर्तित हुई, किस प्रकार वे धीरे-धीरे नीचे बैठती गयी किस प्रकार जमीन/पृथ्वी ऊपर उठी तथा धीरे-धीरे नीचे गिरी, किस प्रकार पहाड़ बने, और इसी प्रकार अन्य परिवर्तन हुए.

परिवर्तन होने के अत्यंत धीमे प्रकरण का अध्ययन करने से गणना की गई कि उदारणतः, चट्टान की एक मोटी परत/सतह बनने में अथवा पहाड़ को ऊपर उठने में कितना समय लगेगा.

चार्ल्स ल्येल्ल (1797-1875) नाम के एक स्कॉटिश भू-विज्ञानी ने 1830 एवं 1833 के मध्य इस विचार पर 3-खंडो की एक पुस्तक प्रकाशित की. उसने बिलकुल स्पष्ट कर दिया कि पृथ्वी एक बहुत लम्बे समय में विकसित हुई. यह काल 100,00 0,000-वर्ष से भी कहीं अधिक था.

ये केवल पृथ्वी की चट्टानें नहीं थी, जो धीरे-धीरे परिवर्तित हुई. जीवित प्राणी/चीजें भी अत्यंत धीमी गति से परिवर्तित हुए. इस प्रकार के परिवर्तन को विकास कहते हैं. पृथ्वी में चट्टानें/पत्थर जैसी वस्तुएं पायी गयी. जो स्पष्ट रूप से पौधों/पेड़ों एवं प्राणियों/जानवरों के अवशेष थे, जो अत्यंत पूर्व के थे. परन्तु ये सब आज के प्राणियों एवं वनस्पतियों के समान नहीं थे. अतः यह स्पष्ट था, कि जीवित प्राणी/चीजें समय व्यतीत होने के साथ साथ अत्यंत धीमी गति से परिवर्तित हुई.

लेय्ल्ल के मित्र चार्ल्स रोबर्ट डार्विन (Charles Robert Darwin 1809-1882) नाम के एक अंग्रेज जीव विज्ञानी ने 1859 में एक पुस्तक प्रकाशित की, जिसमे उसने वर्णन किया कि जीवित प्राणी/चीजों में ये परिवर्तन किस प्रकार आये. उसने अपने विकासवाद को प्राकृतिक प्रक्रीयायों द्वारा वर्णित किया. तब तक लिखी गयी पुस्तकों में यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी. और उस समय, लगभग सभी जीव-विज्ञानियों ने धीमे विकास के सिद्धांत को स्वीकार किया.

वास्तव में, विकास अत्यंत धीमा है, तथा 100,000,000-वर्ष का समय पर्याप्त नहीं है. जो प्राणी आज पृथ्वी पर हैं, उनके विवरणके लिये (मानने के लिये) पृथ्वी को और अधिक प्राचीन होना चाहिये. वास्तव में, डार्विन के समय में भी भू-विज्ञानीयों एवं जीव विज्ञानीयों ने सिद्ध नहीं किया कि पृथ्वी कितनी प्राचीन/पुरानी है. वर्तमान में, वैज्ञानिक बिलकुल निश्चित हैं कि पृथ्वी 4,600,000,000-वर्ष प्राचीन/पुरानी है. जो लगभग 5-अरब वर्ष होते हैं.

50-वर्ष तक खगोलविज्ञानी एवं भौतिकविज्ञानी, जो पृथ्वी को कम प्राचीन होने में विश्वास रखते थे, तथा उनके साथ खगोलविज्ञानी एवं भौतिकविज्ञानी, जो पृथ्वी को अधिक पुरानी/प्राचीन मानते थे, तर्क चलते रहे.

सभी तर्क इस बात पर चलते रहे, कि सूर्य कैसे प्रकाशित होता है? खगोलविज्ञानियों एवं भौतिकविज्ञानीयों ने जोर दिया कि सूर्य की सिकुड़न ही ऊर्जा का सबसे बड़ा स्रोत है, और इसका अर्थ है, कि पृथ्वी बहुत पुरानी नहीं हो सकती.

क्या यह संभव था, यद्यपि एक अज्ञात ऊर्जा का ऐसा स्रोत था जो सिकुड़न से भी बड़ा था?

हेल्म्होलत्ज़ के समय में भी, वैज्ञानिकों को भी अनुमान नहीं था कि सूर्य का प्रकाश किस से बना है. मानो कि यह प्रकाश किसी ऐसी वस्तु से बना है जो पृथ्वी पर विद्यमान नहीं है. किस को ज्ञात है कि इस अज्ञात पदार्थ में किस प्रकार की ऊर्जा है.

परन्तु, सूर्य के पदार्थ के विषय में कोई किस प्रकार ज्ञात कर सकता है? सूर्य की चमक ही केवल निकटतम ऐसा भाग था, जिसका अध्ययन किया जा सकता था.

1666 में न्यूटन ने देखा कि यदि सूर्य के प्रकाश को काँच के एक त्रिकोणीय टुकड़े के माध्यम से प्रवेशित कराया जाये, तो प्रकाश झुका हुआ एवं रंगीन प्रकाश के इन्द्रधनुष में फ़ैल गया. न्यूटन ने इस रंगीन इन्द्रधनुष को वर्णक्रम/स्पेक्ट्रम कहा, जिसका लैटिन भाषा में अर्थ भूत होता है, क्योंकि वर्णक्रम/स्पेक्ट्रम पदार्थ रहित प्रकाश था, और न ही छुआ जा सकता था, और न ही अनुभव किया जा सकता था. ऐसे वर्णक्रम/स्पेक्ट्रम को उत्पन्न करने वाला उपक्रम स्पेक्ट्रमदर्शी/स्पेक्ट्रोस्कोप था.

1803 में थोमस यंग (Thomas Young 1773-1829) नाम के एक अंग्रेज वैज्ञानिक ने दर्शाया कि प्रकाश विभिन्न लम्बाई की लघु तरंगों से बना है. प्रत्येक तरंग का स्वयं से एक वर्ण/रंग था, परन्तु आपस में मिश्रित होने पर परिणाम धवल/सफ़ेद प्रकाश था.

जब प्रकाश नेस्पेक्ट्रमदर्शी/स्पेक्ट्रोस्कोप में प्रवेश किया, प्रत्येक भिन्न तरंग दूरी/तरंग दैर्ध्य भिन्न मात्राओं में झुकी, और इसने स्पेक्ट्रम बनाया.सबसे अधिक तरंग दूरी/तरंग दैर्ध्य लाल प्रकाश की हैं, और सबसे कम झुकती हैं, अतः वे स्पेक्ट्रम के अंत में हैं. नारंगी, पीले, हरे एवं नीले प्रकाश की तरंग दूरी/तरंग दैर्ध्य लघु और लघु हैं, और अधिक पर अधिक झुकती हैं. बैंगनी तरंग दूरी/तरंग दैर्ध्य लघुतम हैं, तथा स्पेक्ट्रम के दूसरे छोर पर है.

1814 में, जोसफ वोन फरौन-होफेर (Joseph von Fraunhauffer 1787-1826) नाम के एक जर्मन नेत्रचिकित्सक ने एक अतिउत्तम स्पेक्ट्रमदर्शी/स्पेक्ट्रोस्कोप तैयार किया, तथा स्पेक्ट्रम का सावधानी पूर्वक अध्ययन किया. आश्चर्य के साथ उसने देखा कि स्पेक्ट्रम अनेक गहरी रेखाओं द्वारा कटा हुआ है. ये गहरी रेखायें तरंग दूरी/तरंग दैर्ध्य को दर्शाती हैं, तथा सूर्य के प्रकाश में प्रगट नहीं थी. स्पेक्ट्रम में उनकी स्थिति से कोई भी यह ज्ञात कर सकता है, कि यथार्थ में कौन सी तरंग दूरी/तरंग दैर्ध्य प्रस्तुत थी.

1858 में, गुस्तव रोबर्ट किर्छोफ़ (Gustav Robert Kirchoff 1824-1889) नाम के एक अन्य जर्मनी वैज्ञानिक ने उन गहरी रेखाओं का अध्ययन किया कि उनका क्या अर्थ हो सकता है.

किर्छोफ़ के समय तक, यह सर्वविदित था कि सभी पदार्थ विभिन्न प्रकार के लघु परमाणुओं से बने हैं. प्रत्येक भिन्न प्रकार का परमाणु एक तत्व को प्रदर्शित करता है, तथा तब दर्जनों तत्व ज्ञात थे (आज 106 से भी अधिक तत्व ज्ञात हैं).

किर्छोफ़ ने तत्वों को गर्म करने पर प्राप्त प्रकाश का अध्ययन किया. उसने देखा कि प्रत्येक तत्व ने प्रकाश की केवल कुछ निश्चित तरंग दूरी/तरंग दैर्ध्य दी. कभी भी 2 तत्वों ने समान तरंग दूरी/तरंग दैर्ध्य नहीं दी. स्पेक्ट्रमदर्शी/स्पेक्ट्रोस्कोप के उपयोग से पदार्थ द्वारा प्राप्त दूरी/तरंग दैर्ध्य तरंग से यह ज्ञात हो सकता है कि पदार्थ किन तत्वों से बना है. प्राप्त तरंग दूरी/तरंग दैर्ध्य तत्वों को पहचानने में ऊँगलियों के निशान के समान है. शीत पदार्थ उन्ही तरंग दूरी/तरंग दैर्ध्य को अवशोषित करता है, जो कि उस पदार्थ को गर्म करने से उत्पन्न होती हैं. ये गहरी रेखायें तत्वों को पहचानने में ऊँगलियों के निशानों की तरह भी कार्य/काम करती हैं.

इसका अर्थ हुआ, कि यदि सूर्य के प्रकाश के स्पेक्ट्रम का अध्ययन किया जाये, तो गहरी रेखाओं की स्थिति हमे बता सकती है, कि सूर्य की दीप्तिमान/चमकने वाली सतह पर विद्यमान गैसों में किस प्रकार के परमाणु हैं.
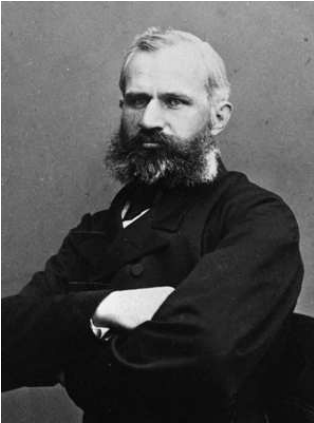
सर्वप्रथम, इसको सफलतापूर्वक एंडर्स जोंस ऐंग्स्ट्रॉम (Anders Jones Angstrom 1814-1876) नाम के एक स्वीडिश वैज्ञानिक ने 1862 में किया. वह दर्शा सका कि सूर्य के स्पेक्ट्रम की गहरी रेखाओं में से कुछ वे थी, जो सामान्य गैस हाइड्रोजन की होती हैं.

ऐंग्स्ट्रॉम के समय से ही सूर्य में विद्यमान अधिक से अधिक तत्वों की खोज होती रही. फिर भी, हाइड्रोजन सबसे अधिक सामान्य है. यह सूर्य में विद्यमान सम्पूर्ण पदार्थ का लगभग तीन-चौथाई है. अतः, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि यह प्रथम तत्व है, जो वहां खोजा गया. सूर्य का लगभग शेष भाग अन्य गैस हीलियम का बना है. सूर्य के सम्पूर्ण पदार्थ का, केवल 2 प्रतिशत अन्य तत्वों से बना है.

विद्यमान तत्वों में, हाइड्रोजन लघुतम एवं सरलतम परमाणु है, तथा हीलियम द्वितीय लघुतम एवं सरलतम परमाणु है. ये 2 सरल प्रकार के परमाणु, केवल सूर्य का 98 प्रतिशत भाग ही निर्मित नहीं करते, अपितु, अब विश्वास किया जाता है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का 98 प्रतिशत से भी अधिक भाग इन्ही परमाणुओं से बना है.
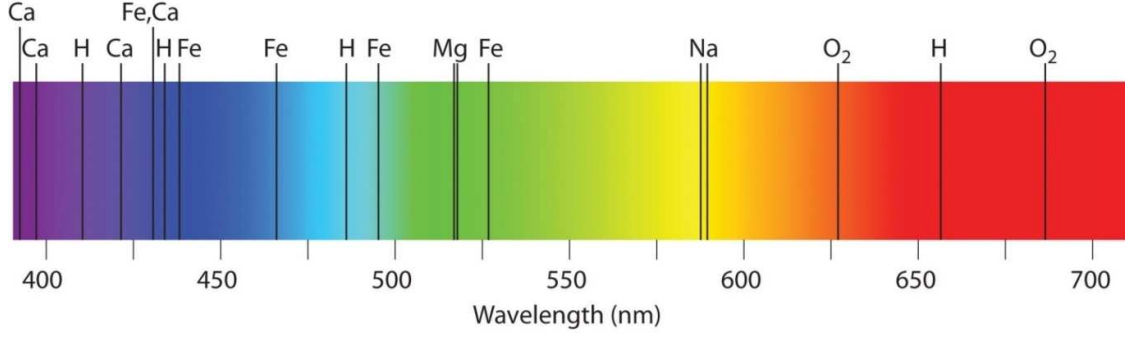
19वी शताब्दी के अंत में यह लगभग सुनिश्चित हो गया था, कि सूर्य भी उन्ही तत्वों से बना है, जिनसे कि पृथ्वी.

अतः अब फिर से भव्य रहस्यमय पदार्थों पर विचार करने का कोई औचित्य नहीं रहा. खगोलविज्ञानी एवं भौतिकविज्ञानी जीतते हुए प्रतीत हुए. गुरुत्वाकर्शी सिकुड़न से बड़ा ऊर्जा का स्रोत संभव नहीं है, और इसका अर्थ हुआ कि पृथ्वी बहुत प्राचीन/पुरानी नहीं है.

भूविज्ञानी एवं जीवविज्ञानी असहाय थे, तथा उनको तब तक राहत नहीं मिली, जब तक कि ऊर्जा का अन्य स्रोत नहीं मिला.

4. विघटनाभिकता/रेडियो धर्मिता

राहत का प्रारंभ 1895 में हुआ. एंटोनी हेनरी बेच्कुएरेल (1852-1908) नाम का एक फ़्रांसिसी भौतिकविज्ञानी एक ऐसे पदार्थ का अध्ययन कर रहा था, जिसमे यूरेनियम के परमाणु विद्यमान थे. उसने आश्चर्य के साथ पाया कि यह निरंतर विकिरण दे रहा था, जो कभी पहले नहीं देखा गया था. यूरेनियम ने बिलकुल नया व्यवहार दर्शाया, जो तब तक विदित नहीं था, इसे विघटनाभिकता/रेडियोधर्मिता का नाम दिया गया.
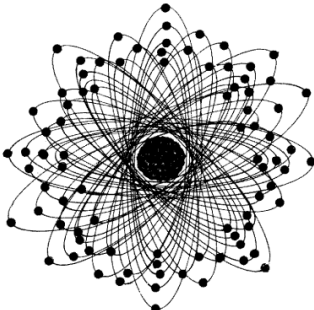
Uranium atom

यूरेनियम तब तक के ज्ञात जटिलतम परमाणुओं से बना था. जटिल परमाणुओं से बने कुछ अन्य तत्व भी विघटनाभिक/रेडियोधर्मी थे, तथा वैज्ञानिकों ने इस नवीन खोज का सावधानी पूर्वक अध्ययन प्रारंभ किया.

पिएर्रे क्यूरी (1859-1906) नाम के एक फ़्रांसिसी रसायन विज्ञानी ने सर्वप्रथम विघटनाभिक/रेडियोधर्मी पदार्थों द्वारा निष्कासित ऊर्जा को मापा. उसने ऐसा 1901 में किया, तथा उसे आश्चर्य हुआ कि ऊर्जा दिन-प्रतिदिन, वर्ष-प्रतिवर्ष निष्कासित होती रही, और कुछ दशाओं में तो समय व्यतीत होने पर भी ऊर्जा में बहुत कम गिरावट आयी. रेडियम तत्व की एक मात्रा के विकिरण की अर्ध/आधी गति होने तक 1600 वर्ष लगेंगे. यूरेनियम को तो ऊर्जा के आधे होने तक अविश्विनीय लम्बा समय

4,500,000,000 वर्ष लगेगा.एक विशेष दिन में निष्कासित ऊर्जा की मात्रा अधिक नहीं थी, परन्तु समाप्त होने से पूर्व प्राप्त होने वाली ऊर्जा विशालथी.

यह सब अत्यंत पेचीदा था, क्योंकि कोई ऐसा स्थान द्रष्टिगत नहीं था, जहाँ से ऊर्जा आ रही थी. विघटनाभिक/रेडियोधर्मी परमाणु केवल वहां उपस्थित थे, जो ऊर्जा दे रहे थे. क्या ऊर्जा का अविनाशिता का नियम गल्त था?

1905 में अल्बर्ट आइंस्टीन (1879-1955) नाम के जर्मन-स्विस भौतिकविज्ञानी ने इसके उत्तर का प्रारंभ किया. उसने सापेक्षता सिद्धांत प्रतिपादित किया. अन्य वस्तुओं के साथ, इस सिद्धांत ने दर्शाया कि पदार्थ अथवा मात्रा स्वयं ही एक शक्तिशाली ऊर्जा का स्रोत है. पदार्थ की लघु मात्रा को भी पर्याप्त ऊर्जा में परिवर्तित किया जा सकता है.

सामान्य दशाओं में साधारण/सामान्य पदार्थ में केवल अतिसूक्ष्म मात्रा ही परिवर्तित हुई, तथा ऊर्जा की साधारण मात्रा ही उत्पन्न हुई. विघटनाभिक/रेडियोधर्मी परमाणुओं में, पदार्थ की अधिक मात्रा खर्च हुई, एवं पर्याप्त रूप से अधिक ऊर्जा प्राप्त हुई.

परन्तु विघटनाभिक/रेडियोधर्मी पदार्थों की अधिक मात्रा ऊर्जा में क्यों परिवर्तित हुई? इसका उत्तर परमाणुओं पर नवीन दृष्टी डालने से प्राप्त हुआ.

19वीं शताब्दी के पूर्ण समय में परमाणुओं को लघुतम कण माना गया. इससे लघु/छोटा कुछ भी दृष्टिगत नहीं हुआ.

फिर भी, विघटनाभिक/रेडियोधर्मी पदार्थों द्वारा निष्काषित विकिरण के कण परमाणु से अधिक लघु/छोटे थे. ये अवपरमाणवी (-) कण थे. यदि अवपरमाणवीय कण विद्यमान रहते, तब शायद,जिन कणों ने परमाणुओं को बनाया,वे और भी अधिक लघु होंगें.

अर्नेस्ट रुदेरफोर्ड (1871-1937) नाम के एक अंग्रेज भौतिकविज्ञानी ने सामान्य परमाणुओं को विघटनाभिक/रेडियोधर्मी पदार्थों से निष्काषित अवपरमाणवीय कणों से टकराया. कुछ कण तो टकराये जाने वाले परमाणु के मध्य से निकल गये, परन्तु कुछ कण इधर उधर की दिशाओं में बिखर गये.
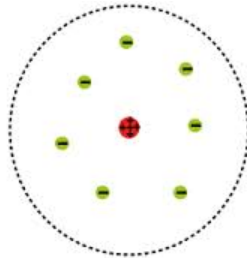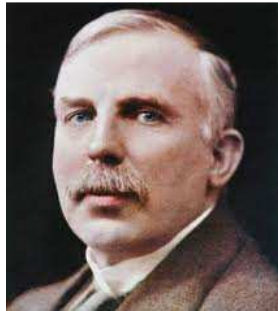
बिखरे हुए अवपरमाणवीय कणों एवं बिखरने की दिशाओं से रुदेरफोर्ड ने 1911 में दर्शाया कि परमाणु की लगभग सम्पूर्ण मात्रा उसके केंद्र के एक लघु पिंड में थी, जिसे नाभिक कहा गया. शेष परमाणु इस लघु नाभिक के चारो ओर कणों से घिरा हुआ था, जिन्हें इलेक्ट्रान कहते हैं. इलेक्ट्रान की मात्रा अत्यंत कम थी.

सामान्य रासायनिक परिवर्तन जैसे कि ईंधन का जलने के द्वारा परमाणुओं में इलेक्ट्रानों का पुनः व्यवस्थापन निहित/शामिल होता था. अत्यंत लघु आकार होने के कारण, इलेक्ट्रानों के पास अत्यंत लघु मात्रा ही खोने के लिये थी. अतः, केवल ऊर्जा में उपयोग हुई ऊर्जा की अपेक्षा, लघु मात्रा में ऊर्जा उत्पन्न हो सकी.

परन्तु, दूसरी ओर, विघटनाभिक/रेडियोधर्मी पदार्थों में नाभिक के कणों में परिवर्तन हुआ तथा कणों का पुनः व्यवस्थापन हुआ. ये कण (प्रोटोन एवं न्यूट्रॉन) इलेक्ट्रानों की अपेक्षा लगभग 2000-गुणा भारी हैं. ये अपने में व्यवस्थापन करने में अधिक मात्रा खो सकते हैं तथा इस प्रकार, इलेक्ट्रानों की अपेक्षा, अत्यअधिक ऊर्जा उत्पन्न कर सकते हैं.

दूसरे शब्दों में, विघटनाभिकता/रेडियोधर्मीता, परमाणु ऊर्जा को निहित/शामिल करती है.

परमाणु ऊर्जा एक विशाल ऊर्जा का स्रोत है. परन्तु, यह मुख्यतः परमाणु की नाभिक में बंधित रहती है, और वहीं रहती है. अतः, लोगों को इसके विषय में ज्ञात नहीं था. यह तभी संभव हुआ, जब विघटनाभिकता/रेडियोधर्मीता की खोज हुई. बिलकुल संयोग से ही परमाणु ऊर्जा की उपस्थिति का ज्ञान हुआ.

एक बार यह ज्ञात हो गया, लोगों को शीघ्र ही इसका अनुमान होने लगा कि परमाणु ऊर्जा सूर्य के प्रकाश का स्रोत हो सकती है. यदि सूर्य विघटनाभिक/रेडियोधर्मी है, यह अतिविशाल रूप से ऊर्जा उत्पन्न करेगा. और अधिक बात यह है कि, सूर्य ऊर्जा को इतने धीमी गति से निष्काषित करेगा कि यह विस्फोटित नहीं होगा. इसके स्थान पर, यह धीमी एवं सामान गति से ऊर्जा उत्पन्न करेगा, तथा यह निरंतर भूतकाल में भी करोड़ों वर्षों तक ऐसा करता रहा है, और भविष्य में भी करोड़ों वर्ष तक करता रहेगा. यह उत्तम हल/उत्तर लगा.

परन्तु, कठिनाई यह थी कि पहले विघटनाभिकता/रेडियोधर्मीता केवल कुछ ही जटिल परमाणुओं में पायी गयी. ऐसे परमाणु यदि सूर्य में विद्यमान हैं, तो उनकी मात्रा अत्यंत कम होगी. सूर्य में विघटनाभिक/रेडियोधर्मी परमाणु केवल इतने ही हैं जो सूर्य को अत्यंत सूक्ष्म ऊर्जा ही दे सकते हैं.विघटनाभिकता/रेडियोधर्मीता उत्तम हल हो सकता था, परन्तु यह उत्तर नहीं था.

5. संयोजन

निष्कर्ष यह निकला, कि प्रकृति में विद्यमान विघटनाभिकता/रेडियोधर्मीता ही केवल संभव नाभकीय परिवर्तन नहीं हैं. मानव अन्य प्रकार के परिवर्तन उत्पन्न कर सकते हैं, और ऐसा प्रथम बार रुदेरफोर्ड ने 1919 में किया.

रुदेरफोर्ड ने नाइट्रोजन गैस को विघटनाभिक/रेडियोधर्मी परमाणुओं के अवपरमाणवी कणों के साथ टकराया. कणों में कुछ ने नाइट्रोजन परमाणुओं के नाभिक पर टक्कर मारी तथा नाभिक के कणों को पुनः व्यवस्थित किया. जिसने उनको ऑक्सीजन के परमाणु में परिवर्तित कर दिया.

इस प्रकार, रुदेरफोर्ड ने मानव निर्मित नाभिकीय अभिक्रिया उत्पन्न की. नाभिक के बाहर इलेक्ट्रोनो के पुनः व्यवस्थापन के स्थान पर, यह नाभिक के अन्तः (अंदर) में कणों का पुनः व्यवस्थापन हुआ.

आने वाले वर्षों में, वैज्ञानिकों ने अन्य अनेक प्रकार की निर्मित नाभिकीय अभिक्रियायें उत्पन्न की, तथा ऐसा लगना प्रारंभ हो गया, कि इस तरह का कोई उत्तर सूर्य के प्रकाश के लिये हो सकता है.

यदि यह सामान्य विघटनाभिकता/रेडियोधर्मीता नहीं थी, जो सूर्य की ऊर्जा आपूर्ति करती है, तथा इसे दैदीप्यमान रखती है. यह कोई ओर अन्य नाभिकीय अभिक्रिया हो सकती है. इसमें भी संदेह था.
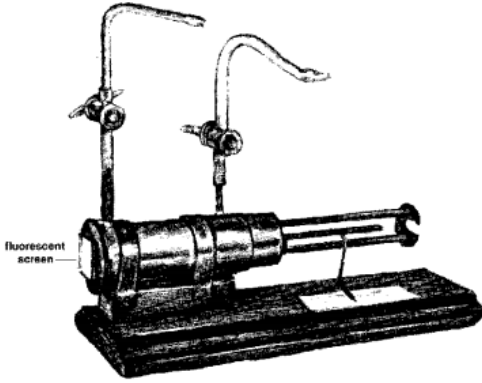
Apparatus used by Rutherford to break up nuclei of nitrogen atoms

नाभिकीय अभिक्रियायें, स्वयं नहीं हो सकती, कभी-कभी रासायनिक अभिक्रियाओं के लिये भी यह सत्य है. उदहारण के लिये, पेट्रोल/गैसोलीन, कोयला, लकड़ी/काठ को यदि खुली हवा/वायु में रखा जाये तो स्वतः नहीं जलेंगे. लेकिन, रासायनिक अभिक्रियायें प्रारंभ की जा सकती हैं, यदि ऊष्मा की आपूर्ति की जाये. यदि किसी ईंधन को जलती माचिस लगायें अथवा किसी प्रकार ईंधन का तापमान बढ़ाया जाये तो ईंधन जल जायेगा.

परन्तु, नाभिकीय अभिक्रियाओं के साथ ऐसा नहीं है. गर्म करने पर भी ये प्रारंभ नहीं होंगी. वैज्ञानिक अच्छी तरह (बिलकुल) संतुष्ट थे कि सूर्य की सतह के तापमान (लगभग 10,000-डिग्री फ़हेर्न्हेइत) तक भी गर्म करने पर नाभिकीय अभिक्रियायें प्रारंभ नहीं होंगीं.

ऐसी नाभिकीय अभिक्रियाओं को करने के लिये एक ही उपाय था, कि परमाणविक नाभिक का अवपरमाणविक कणों के साथ टकराव किया जाये. ये नाभिक अवश्य ही कुछ ऊर्जा निष्काषित करती हैं. परन्तु, अवपरमाणविक कणों द्वारा उपयोग की गयी ऊर्जा का केवल एक सूक्ष्म अंश प्राप्त हुआ, ऊर्जा का अधिकांश भाग नाभिक को नहीं छूता था. इसका अर्थ यह हुआ, कि नाभिकीय अभिक्रिया से जितनी ऊर्जा प्राप्त होती है,उससे कहीं अधिक व्यय करनी पड़ती है.

और यद्यपि अधिकतम नाभिकीय अभिक्रियायें पर्याप्त ऊर्जा उत्पन्न कर सकती हैं, परन्तु यह सूर्य को शक्ति देने के लिये पर्याप्त नहीं है.

1915 में विलियम ड्रापर हर्किन्स (1873-1951) नाम के एक अमेरिकी रसायनविज्ञानी ने इंगित किया कि हाइड्रोजन के 4 नाभिकों को एक साथ इतना कठोर दाबा जाये कि वे हीलियम नाभिक बनाने के लिये एक साथ संलग्न हो जायें. अर्थात, हीलियम बनाने के लिये हाइड्रोजन नाभिक संयोजित हो जायें. जहाँ अनेक लघु नाभिकों को एक बड़े नाभिक में संयोजित किया जाये, ऐसी अभिक्रिया को नाभिकीय संयोजन कहते हैं.

कुछ वर्षों में ही, वैज्ञानिक नाभिकीय अभिक्रिया के विषय में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर चुके थे, कि अब तक ज्ञात अन्य नाभिकीय अभिक्रियाओं की अपेक्षा हाइड्रोजन-संयोजन अधिक ऊर्जा उत्पन्न करेगा. और यह भी ज्ञान हो गया था कि सूर्य मुख्यतः हाइड्रोजन है.

यदि यह नाभिकीय अभिक्रिया है, जो सूर्य को दैदीप्यमान करती है, तो इसमें हाइड्रोजन अवश्य ही शामिल है. इसका कारण यह भी हो सकता है कि सूर्य में इतनी अधिक हीलियम थी कि यह सूर्य के विद्यमान होने के सम्पूर्ण समय में हाइड्रोजन के संयोजन से बनती रही. गणनाओं ने दर्शाया कि सूर्य में पर्याप्त हाइड्रोजन विद्यमान है, जो सूर्य को आज की तरह अरबों वर्ष तक दैदीप्यमान रख सकती है.

परन्तु, इसमें भी एक संशय था. हाइड्रोजन के सूक्ष्म नाभिकों को संयोजित करने के लिये उनको एक साथ अति विशाल बल (शक्ति) से दबाना/धक्का देना होगा. बल की आपूर्ति करने के प्रयत्न में, कोई उनको गर्म करने की कल्पना भी कर सकता है. तापमान जितना अधिक होगा, उतनी ही तीव्रता से हाइड्रोजन नाभिक गतिमान होंगे, तथा एक-दूसरे के साथ अधिक शक्ति से टकरायेंगे. परन्तु सूर्य की सतह के तापमान के समान, तापमान हजारों डिग्री में ही आवश्यक नहीं होगा, अपितु करोडों डिग्री में होगा.

हाइड्रोजन संयोजन भी हल/उत्तर प्रतीत नहीं हुआ.

Solar fusion: two hydrogen atoms combine to form helium atom
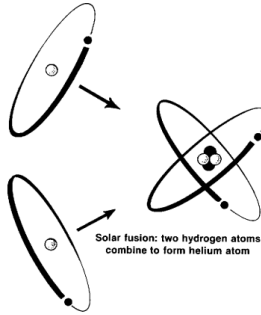
इसी अवधि में, आर्थर स्टैनले एडिंग्टन नाम के एक अंग्रेज खगोलविज्ञानी ने सूर्य के अन्तः सरंचना का अध्ययन किया एवं आश्चर्यचकित हो गया.

यह संभव था कि सूर्य गैस की एक विशाल गेंद हो. यह तो सत्य ही है कि हाइड्रोजन एवं हीलियम से सूर्य की 98-प्रतिशत सरंचना बनती हैं, जो गैस ही तो हैं. सूर्य के अंदर में यह संभव था कि बाह्य सतह का भार गैस को तब तक दबाता रहे, जब तक कि यह लगभग ठोस न हो जाये. परन्तु, यदि ऐसा होता, सूर्य एक लघु गेंद में दब गया होता.यह ऐसा विशाल पिंड नहीं हुआ होता. परन्तु, यदि ऐसा है, तो किसने इसको इतना विशाल रखा? सूर्य के स्वयं के गुरुत्वाकर्षण ने तो नहीं इसे पदार्थ की गेंद में धकेला?

एडिंग्टन ने विचार किया कि उच्च तापमान एक ऐसी चीज है, जो सूर्य को सिकुड़न से दूर रखता है. उच्च तापमान के कारण गैसें विस्तरित होती हैं. यदि तापमान पर्याप्त उच्च हो, तो गैसें सूर्य के अपने विशालगुरुत्वाकर्षण के विरुद्ध भी विस्तरित होंगीं.

परन्तु, कितना उच्च तापमान ऐसा करेगा? एडिंग्टन ने आवश्यक गणनाएं की तथा 1920 के प्रारंभिक दशक में निष्कर्ष पर पहुंचे कि सूर्य अन्तः में किसी की कल्पना से कहीं अधिक गर्म होना चाहिये. सूर्य अन्तः/अंदर की ओर गर्म होना चाहिये. सूर्य के केंद्र पर तापमान 25,000,000-डिग्री फहेरेंनीट जितना उच्च हो सकता है.

यदि ऐसा हो तो, हाइड्रोजन संयोजन संभव होना चाहिये. यह आवश्यक नहीं था कि ऐसा विचार किया जाये कि हाइड्रोजन संयोजन सूर्य की सतह पर होता हो, जहाँ तापमान 10,000-डिग्री फहेरेंनीट हो. यह अधिक संभव था कि यह संयोजन सूर्य के केंद्र अथवा इसके निकट हो, जहाँ तापमान कहीं अधिक था.

सूर्य के अन्तः भाग के उच्च तापमान पर परमाणु विघटित होंगें. इलेक्ट्रान दूर निष्काषित हो जायेंगे तथा केवल केन्द्रिय नाभिक अकेले रह जायेगा. ये नाभिक अखंड/अक्षत परमाणु के भाग/अंश की अपेक्षा, अधिक निकट आ जाएँगे. अतः, ऊष्मा के कारण, वे अधिक बार और लगातार टकरायेंगे और इससे संयोजन अधिक संभव होगा.

फिर भी, यह कहना पर्याप्त नहीं था कि हाइड्रोजन संयोजन, केंद्र पर होगा. कितनी तीव्रता से यह क्रियान्वित होगा? यदि यह अत्यंत धीमी गति से करेगा, तो सूर्य इतनी ऊर्जा उत्पन्न करने के योग्य नहीं होगा, जितनी वह देता है. यदि यह कार्य अत्यंत तीव्र गति से होता है, तो सूर्य विस्फोटित हो जायेगा.

यह आवश्यक था कि सूर्य के केंद्र पर अत्यअधिक तापमान एवं दबाव की उपस्थिति में होने वाले नाभिकीय परिवर्तनों के वेग/दर की गणना की जाये. इसको करने के लिये, यह आवश्यक था कि प्रयोगशाला की दशाओं/स्थितियों में नाभिकीय अभिक्रियाओं को अच्छी तरह सीखा/समझा जाये. तब यह संभव हो सकेगा कि सूर्य के अन्तः में इनका वेग/दर क्या होगा?

1938 तक, ऐसी गणनायें करने का पर्याप्त ज्ञान नहीं था. हंस अल्ब्रेच्त बेथे (1906) नाम के एक जर्मन-अमेरिकी भौतिकविज्ञानी ने इसकी गणना की तथा पाया कि सूर्य के केंद्र की दशा में हाइड्रोजन नाभिक नाभिकीय अभिक्रियाओं की श्रंखलाओं के रूप में अभिक्रिया/क्रिया करेगा. अंत में हीलियम उत्पन्न करेगा, और ऊर्जा की उचित मात्रा उत्पन्न करेगा, जो सूर्य के दैदीप्यमान के लिये आवश्यक है.

लगभग उसी समय, कार्ल फ्राइडरिच वोन वेइज़्सक्केर (जन्म 1912) नाम के एक जर्मनी ने कुछ गणनाएँ की तथा समान परिणाम प्राप्त किये.
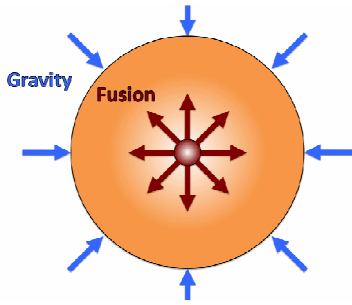
अंत में समस्या का हल/समाधान हो गया. वैज्ञानिकों ने खोज निकाला की सूर्य को दैदीप्यमान रखने के लिये क्या था, वह हाइड्रोजन संयोजन है.

प्रत्येक हाइड्रोजन संयोजन सदैव के लिये टिकाऊ नहीं होता. सूर्य लगभग 5-अरब वर्षों से दैदीप्यमान है, और अभी भी हाइड्रोजन की विशाल मात्रा इसमें शेष है. अंततः/अंततोगत्वा/आखिरकार, यदि अगले/आने वाले 5-अरब वर्षों के पश्चात्, संभवतः, इसमें परिवर्तनों के लिये हाइड्रोजन की पर्याप्त कमी हो जायेगी, जिसके कारण, पृथ्वी पर जीवन असंभव हो जायेगा. परन्तु, भविष्य में यह अत्यंत दूर है. इसके लिये अभी परेशान होने की आवश्यकता नहीं है.

अभी भी यह एक पेचीदा मामला है

सूर्य के केंद्र पर जिस प्रकार की नाभिकीय अभिक्रिया हाइड्रोजन से हीलियम उत्पन्न करने के लिये होती रहती हैं, कुछ सूक्ष्म कण भी उत्पन्न करती है, जिन्हें न्युट्रीनो कहते हैं. न्युट्रीनो इतने सूक्ष्म हैं कि उनकी मात्रा बिलकुल भी नहीं होती, तथा पदार्थ की उपस्थिति में मुश्किल से बाधित होते हैं.

जैसे ही सूर्य के केंद्र पर न्युट्रीनो उत्पन्न होते हैं, वे प्रकाश के वेग से चलना होना प्रारंभ कर देते हैं, पदार्थ के मध्य से ऐसे प्रवेश कर जाते हैं, जैसे कि वहां पदार्थ हो ही नहीं. ये सभी दिशाओं में जाते हैं तथा सूर्य की सतह पर 2.3-सेकंड में पहुँच जाते हैं. तत्पश्चात, ये आकाश में बाहर निकल कर चमक जाते हैं जो पृथ्वी की

दिशा में गतिशील होते हैं, वे पृथ्वी पर 8-मिनट में पहुँच जाते हैं, तत्पश्चात, सम्पूर्ण गृह में (हमारे मध्य से यदि हम रस्ते में हैं) प्रवेशित हो जाते हैं.

कुछ ही न्युट्रीनो, अरबों में कुछ ही, वास्तव/सत्यता में यहाँ वहां किसी एक परमाणुवी नाभिक से अवरोधित हो जाते हैं. फ्रेडेरिक रेइनेस (1918) नाम का एक अमेरिकी भौतिकविज्ञानी, उन सबमे एक था जिसने प्रथम बार न्युट्रीनो को पृथ्वी पर होने वाली नाभिकीय अभिक्रियाओं में ज्ञात किया. तत्पश्चात, उसको आश्चर्य हुआ कि क्या वह इनको सूर्य से भी ज्ञात खोज सकता है.

उसने बहिष्कृत खदान में 1-मील गहरे में न्युट्रीनो को ज्ञात करने का उपक्रम लगाया. इतनी गहराई पर कार्य करने का कारण था कि वहां अन्य प्रकार के कण इतनी मिट्टी/भूमिएवं चट्टानों को भेद नहीं सकते. अतः, जो भी कण मिलेंगे, वे न्युट्रीनों होंगे. रेइनेस ने अतिउत्तम उपक्रम प्रयोग किया. परन्तु, उसे ज्ञात था कि उन कणों में से कुछ ही मिल पायेंगे. उसने गणना की कि कितने न्युट्रीनों मिलने चाहियें. परन्तु, आश्चर्य हुआ कि अपेक्षा से कहीं कम ही मिले. जितने मिलने चाहिये थे, उसे केवल एक तिहाई (1/3) ही मिले.

उसने अपने उपक्रम तथा गणना को भली प्रकार जांचा/निरक्षण किया, परन्तु कुछ भी त्रुटिपूर्ण नहीं मिला. उसने जितने न्युट्रीनों मिलने चाहिये थे, अपेक्षाकृत केवल कुछ ही न्युट्रीनों मिल पाये थे. यह वर्षों तक चलता रहा, तथा सदैव कुछ ही न्युट्रीनों रहे.

कुछ भौतिकविज्ञानी इसे खोये हुए न्युट्रीनों का रहस्य कहते हैं. और अब तक, वे इसके लिये निश्चित नहीं हैं कि इसका विवरण कैसे दिया जा सके.

इसमें कोई संदेह नहीं है कि हाइड्रोजन संयोजन ही सूर्य को दैदीप्यमान रखता है, परन्तु सूर्य के केंद्र पर होने वाली अभिक्रियाओं अथवा न्युट्रीनों के विषय में, जो बिलकुल सत्य नहीं है, और अधिक ज्ञान की आवश्यकता है.

वैज्ञानिक निरंतर इस विषय पर विचार एवं प्रयोग करते रहेंगे, जब तक कि बहुत सही/अच्छा बिलकुल सही/अच्छा नहीं हो जाता. तब, सूर्य के दैदीप्यमान होने के आज के ज्ञान की अपेक्षा और अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे.

अंत